संत, पंथ और नेता

★ संत सदा निर्मल होता है और पंथ मतवाला हाथी। पंथ का मतवाला हाथी पहले सन्त को मारता है फिर जन मानस को कुचलने चल देता है......

★ संत मनुष्य मात्र को जोड़ता है। पंथ बांटता है।

★ संत कभी पंथ नहीं चलाता! पंथ चलाते हैं नेता और ठेकेदार.......

★ तुम संत और पंथ, दोनों के एक साथ भक्त कदापि नहीं हो सकते। सोचो? संत के होना चाहोगे अथवा पंथ की दुकान का बिकाऊ सौदा?

अध्यक्ष
स्वामी सनातन श्री

व्यापक अध्यात्मिक शिक्षा प्रसार में बहुमूल्य योगदान करें।

(दक्षिणा २ रुपया मात्र)
पुनर्प्रकाशन हेतु

श्री सनातन आश्रम, कुर्सी रोड, लखनऊ–७

फोन : ७३७९७

संत ! पंथ !! और नेता!!!

सन्त सदा निर्मल होता है और पंथ मतवाला हाथी। पंथ का मतवाला हाथी पहले अपने सन्त को ही मारता है, कुचलता है। पुनः वह भक्त समाज को, जन-जन को, कुचलने चल देता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि संत सदा निर्मल होता है, और पंथ मत-वाला हाथी। सन्त और पंथ कभी एक नहीं होते। उनकी राहें सदा एक दूसरे से विपरीत रहती हैं। उल्टी चलती हैं।

हम सारी दुनियाँ से उदाहरण लें तो स्वतः स्पष्ट हो जायेगा, कि संत और पंथ सदा एक दूसरे के विपरीत रहे हैं। पवित्र मसीहा को ही लें। ईसा-मसीह एक अद्भुत निर्मल सन्त थे। वे सदा गरीब गड़रियों को उनके मानवीय अधिकार दिलाने के लिए जूझते रहे। सन्त सभी को मनुष्यता के अधिकार और एक आजाद जिन्दगी की बात करता रहा। उन्हीं के हित में वह महान संत सूली ही चढ़ाया गया। उसे सताये हुए लोगों के लिए अपने आप को बलिदान भी करना पड़ा। मसीहा क्रास पर सूली चढ़ा दिया गया।

मसीहा के जाने के एक लम्बे काल के उपरान्त क्रिश्चियनिटी (ईसाइत) एक पन्थ बनी और फिर ये पंथ की आँधी, बन्दूक और तलवार की नोक पर दूसरे देशों को गुलाम बनाने चल दी। पंथ, सत्ता के मिथ्याभिमान के लिए मासूम लोगों को मौत के घाट उतार रहा था। हंसते- खेलते चेहरों को लाशों के टुकड़ों में बदल रहा था। "क्रिश्चिय-निटी" के नाम पर, ईसाइत के नाम पर, बेगुनाह लोग लड़ाइयों में मारे जा रहे थे। उनकी लाशों के ढेरों पर नये साम्राज्य बनाये जा रहे थे। देश के देश गुलाम बनाये जा रहे थे। ये सब कुछ हो रहा था पंथ की आड़ में। पंथ के नाम पर।

क्राइस्ट गरीब गड़रियों की भी आजादी मांग रहा था। पंथ सभी को गुलाम बना रहा था। अपने सत्ता के मिथ्याभिमान के सिक्के जमा रहा था। मैं पूछता हूं आपसे ! कि जब पंथ सत्ता के मिथ्याभिमान के लिए दूसरे देशों की भोली जनता को तबाह कर

रहा था तो क्या यह सारा पंथ, क्राइस्ट की छाती पर नई कीलें नहीं ठोक रहा था ? संत गरीब और सताये हुए लोगों को भी आजाद करना चाहता है। पंथ दुनिया को गुलाम बनाकर अपने पंथ का सिक्का चलाना चाहता है। क्या ये पंथ का मतवाला हाथी, पहले संत को मारकर और फिर जनमानस को कुचलता नहीं है ?

दूसरा उदाहरण देता हूं :–"मिडिल-ईस्ट" (मध्य एशिया) में एक अद्‌भुत संत हुआ, महान मुहम्मद। वह एक अद्‌भुत निर्मल संत है। उसके मन में गरीब और सताये हुए लोगों के लिए बहुत ही दया का भाव है। वह सबके साथ समान न्याय और व्यवहार की एक सुन्दर सरिता बहाना चाहता है। महान मुहम्मद ने अपने गुलामों को भी आजाद कर दिया। उनको आजाद करते समय संत की आंखों में आंसू थें, और होठों पर ये शब्द:-

"इन्सान को गुलाम बनाना तौहीने खुदा है, क्योंकि इन्सान नूरे खुदा है।"

सन्त के जाने के लम्बे काल के उपरान्त इस्लाम एक पंथ बना और उसने तलवार की नोक पर अपने धर्म को फैलाने के लिए खून की होलियाँ खेलनी शुरू कर दीं। सन्त अपने गुलामों को भी आजाद कर रहा था और पंथ दूसरे देशों को गुलाम बना रहा था। आप ही बतायें कि क्या सन्त और पंथ कभी एक राह चलें हैं ? भारत में ही आयें, "गुरू-नानक" एक अद्‌भुत सन्त हुए हैं। "गुरूनानक" के दो अति प्यारे शिष्य हैं, बाला और मरदाना। एक मुस्लिम है और दूसरा पंडित है। सन्त दोनों को सीने से लगाकर रखता है। वह हिन्दू और मुस्लिम के भेदभाव को नहीं जानता। बाला और मरदाना गुरूनानक की दो आँखें हैं। उसके दो बाजू हैं ! गुरूनानक जहाँ भी जाते हैं, वे बाला और मरदाना को अपने साथ ही लेकर जाते हैं, और दोनों को असीम प्यार करते हैं। कभी भी भेदभाव नहीं करते। परन्तु गुरूनानक हटे। वे गोलोक वासी हो गये। उनकी मृत्यु के लम्बे काल के उपरान्त जब खालसा एक पंथ बना तो पहली घल्लू-धारा मरदाने पर थी। तलवार की धार पर पंथ मुस्लिम जाति के लोगों से बदलें की भावना से कत्ले आम कर रहा था। गुरूनानक का मरदाना कट रहा था। दूसरा नम्बर बाले का आ गया। इस बार खालसा पंथ निरीह हिन्दू जाति के लोगों को, बाला के ही वंशजों को निर्ममता से काटने लगा। पवित्र मन्दिर, गुरूद्वारे, जहाँ से लोग अमृत लेकर जाते थे, वे उनकी मौत का कारण बन गये। बम और गोले फटने लगे। मासूम लोगों को लाशों के ढेर में बांटने लगे। सन्त गुरूनानक, बाला और मरदाना को सीने से लगाये रहे। और पंथ "बाला" और "मरदाना" को निर्ममता से काटता रहा। आप ही बताएं कि क्या पंथ और सन्त कभी एक राह चले हैं?

अद्भुत सन्त हुए कबीर। ऐसे अमृतमय सन्त जिनकी वाणी से, सहज भाव में, वेद का ज्ञान ही सरल गीतों में प्रकट होता था। सन्त कबीर के गुरू रामानन्द हैं। गुरू-मंत्र श्री राम है। झूम के गाते सन्त कबीर :–

"भजो रे मन राम गोविन्द हरि, जब तप साधन कछु नहीं लागत,
खरचत नहीं गठरी।
कहत कबीर जा मुख राम नहीं, तामुख धूल भरी, भजो रे मन राम गोविन्द हरि॥"

"संत कबीर" की ये अति प्रिय साखी हैं, जिसे झूमकर गाता है संत कबीर :–

"हरि मेरे पिउ, मैं तो हरि की बहुरिया।"

तथा

"कबीरा कुत्ता राम का, मोती मेरा नाम।"

मस्त गाते हैं राम को संत कबीर और उनकी बेटी कमाली संगत् के बीच में बैठकर झूमकर गाती हैं :–

"श्याम निकस गये, मैं न लड़ी थी।"

मस्त होकर गाते कबीर और कमाली राम और कृष्ण के गीत आत्म-विभोर होकर। झूमती रही संगत उनके साथ। परन्तु समय के अन्तरालों में जब कबीर और कमाली खो-गये। हरि के धाम को चल दिये। "संत कबीर" के जाने के एक लम्बे समय के बाद जब कबीर पंथ बना, तो राम और कृष्ण को गालियाँ देकर उन्हें नकारता है। सन्त संगत झूम के राम और कृष्ण को गाती है। पंथ राम और कृष्ण का द्रोही हो जाता है। मैं पूछता हूँ आपसे, जब राम और कृष्ण का अपमान करता है पंथ, तो क्या कबीर और कमाली की हत्या नहीं करता पंथ ? सन्त, राम और कृष्ण को रोम-रोम से समर्पित है और पंथ, सन्त के समर्पण का हत्यारा है ? आप ही बताइये क्या सन्त और पंथ कभी एक राह चले हैं?

महात्मा बुद्ध एक अद्भुत निर्मल सन्त हुए हैं। पूर्ण परिपक्व बौद्धिकता के प्रवर्तक थे वे। वाम-मार्ग, तन्त्र और कापालिकों को वह ठग, लुटेरा और धोखेबाज ही बताते थे। वे सत्य, ज्ञान और पूर्ण बौद्धिकता में ही विश्वास करते थे। उन्होंने कभी भी वाम-मार्ग, कापालिक और चमत्कारियों से समझौता नहीं किया। परन्तु, जब "बुद्ध" धरती पर नहीं रहे। उनके जाने के लम्बे समय के उपरान्त "बौद्ध" एक पंथ बना तो "बुद्ध" को नकारकर, वाम-मार्ग को इस पंथ ने ही जीवन दिया। बुद्ध वाम-मार्गियों के खिलाफ था, तांत्रिकों

के खिलाफ था । और पंथ, तंत्र और बाम-मार्ग को ही लेकर चला है । आप ही बताइये क्या सन्त और पंथ कभी एक राह चलें हैं ।

सन्त कभी पंथ नही बनाता । सन्त कभी पंथ नहीं बनता । पंथ कभी भी सन्त की राह को, जनता को, नहीं दिखा सकता । जन-मानस कभी भी, एक साथ सन्त और पंथ का भक्त नहीं हो सकता ।

सन्त कभी पंथ नहीं चलाते । पंथ सदा ठेकेदार और नेता चलाया करते हैं । पंथ के ठेकेदार और सन्त की दृष्टि भी कभी एक नहीं होती । सन्त चाहता है, कि जन-मानस आपस में जुड़े और उस सर्वव्यापी परमेश्वर जैसा अच्छा और पवित्र बने । पंथ चाहता है, जन-मानस बंटे । उसके लोगों का समूह बढ़े, जिससे उसके पंथ की ठेकेदारी और अधिक मजबूत हो । सन्त जोड़ता है, पंथ बांटता है । मैं पूछता हूँ आपसे कि क्या आप सन्त और पंथ दोनों के लिए एक साथ जिम्मेदार हो सकते हैं ? क्या आप सन्त और पन्थ दोनों के साथ , एक ही समय में ईमानदार हो सकते हैं ?

सन्त के शब्द, ईश्वर के शब्द होते हैं । सन्त और ईश्वर में भेद नहीं होता है । सन्त की आवाज ही, ईश्वर की आवाज है । क्योंकि ईश्वर जो कुछ भी बोलता है, वह सन्त द्वारा ही बोलता है । चाहे वेद को प्रकट करना हो, गीता और महाभारत की बात हो, राम की कथा हो, बाइबिल की कहानी हो अथवा कुरान की आयतों का उतरना हो । सभी सद्ग्रन्थ ईश्वर कें द्वारा प्रकट होते हैं और सन्त के द्वारा ही ईश्वर उनकों प्रकट करते हैं । सन्त की वाणी और ईश्वर की वाणी एक ही होती है ।

सद्ग्रन्थ जब तक सन्त के पास रहते हैं, अमृत बरसाते हैं । वही ग्रन्थ जब पन्थ के हाथों में आते हैं, तो समाज में घुटन पैदा करने लगते हैं । आकाश से जो अद्भुत अलौकिक ग्रन्थ उतरे सन्त के द्वारा । ईश्वर की और सन्त की, मन्शा उन ग्रन्थों के पीछे यही थी कि धरती का मनुष्य भी, इन सद्ग्रंथों के द्वारा ईश्वर की अच्छाइयों कों प्राप्त हो और मनुष्यता ईश्वरत्व से जुड़कर गगन की ऊँचाइयाँ पाए । धरती का मनुष्य ईश्वर की अच्छाइयों से जुड़, धरती का ईश्वर हो जाये ।

जब तक ये ग्रंथ संत के पास रहते हैं, अमृत बरसता है । जब ये ग्रंथ पंथ के पास आते हैं तो साम्प्रदायिकता की, अंध आस्थाओं की, घुटन भरी जेल बन जाते हैं । उस कागज की किताब को, जिसे दीमक पूरा का पूरा चाट जाता है उस कागज की जेल का एक सीखचा भी

सारा समाज मिलकर हिला नहीं पाता। यूं हमको बनाने वाला तो सर्वव्यापी रहता है, पर हम सम्प्रदायों की घुटन भरी जेल में पिसते चले जाते हैं। पंथ के ठेकेदार तथा नेता, सन्त और पंथ के नाम पर दुकाने सजाने लगते हैं। सन्त के शब्दों को भी तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने लगते हैं।

आदि शंकर ने चाण्डाल को भी अपना गुरू बनाया। आज शंकराचार्य छुआछूत और भेदभाव से भी ऊपर नहीं उठ पाते हैं। इसी परिपाटी का चलन हम अतीत में भी देखते रहे हैं, तथा वर्तमान में भी सब कुछ अतीत के जैसा ही है। मैं एक ईमानदार ईसाई से पूछना चाहूँगा, कि क्या वह क्राइस्ट को मानेगा अथवा क्रिश्चियनटी को ? वह सन्त को मानेगा अथवा उस साम्प्रदायिकता को, जो सन्त के बिल्कुल विपरीत है ? सन्त का अवरोध है। मैं एक धर्म प्राण मुसलमान से पूछना चाहूँगा कि मुहम्मद और इस्लाम इन दोनों में किसके प्रति वह ईमानदार होना चाहेगा ? मैं एक ईमानदार खालसा से पूछना चाहूँगा कि वह पंथ और गुरुनानक इन दोनों में से किसके प्रति वफादार होना चाहेगा ? मै एक कबीर पंथी से पूछना चाहूंगा; कि वह भक्त कबीर का बनेगा अथवा कबीर पंथ का ? सम्प्रदायों में गये हुए सभी लोगों से मैं एक प्रश्न पूछना चाहूंगा कि वे उस सन्त के होना चाहेंगे अथवा पन्थ की माचिस की डिबियों में एक सौदा होकर जीना चाहेगें। सन्त का संग, ईश्वर का संग है। पंथ का संग जिन्दगी को बाजार का सौदा बनाना है। प्यारे ! तू प्रभु के साथ जीना चाहेगा, अथवा पंथ की दुकान का एक सौदा, बिकाऊ माल बनकर जीना चाहेगा ? सबको गम्भीरता से विचार कर निर्णय लेना चाहिए।

सन्त और पंथ की इसी परिपाटी में मैं भारत के निर्मल सन्त, पूज्य महात्मा गाँधी को भी लेना चाहूँगा। बापू यहाँ सन्त हैं और काँग्रेस दल बापू के नाम पर चलने वाला एक पंथ है। बापू सन्त थे, उनकी दृष्टि में आज के नेताओं की दृष्टि में, सन्त और पंथ का भेदभाव ही भारत और भारती की घुटन बना हुआ है। मैं इस विषय पर थोड़ा विस्तार से चर्चा करना चाहूँगा।

भारत की आजादी के साथ बापू ने कहा था, कि हम सब सम्प्रदाय एक साथ सुख से जियें। सब में समानता हो। समन्वय का भाव हो। सब इकट्ठे रहें। बापू ने जो चाहा उसमें कोई नयी बात भी नहीं थी। क्या सारी दुनियाँ में, सभी देशों में, सारे सम्प्रदाय इकट्ठे रहे नहीं रहें है? कौन सा देश है जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख अथवा ईसाई नहीं हैं? कौन सा देश है,

जहाँ मन्दिर, मस्जिद, गिरजे और गुरुद्वारे नहीं हैं ? सभी देशों में सभी सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। सभी जगह नागरिक को नागरिक ही माना गया है। वहाँ के संविधान उनका सम्प्रदायिक वर्गीकरण भी नहीं करते हैं। सारी दुनियाँ में, ये सारे सम्प्रदाय बड़े प्यार से इक्ट्ठे रहते हैं। जो गाँधी ने चाहा उसका चलन सारी दुनिया में है। परन्तु भारत में ये सारे सम्प्रदाय एक दूसरे को मिटा देना चाहते हैं। इस दुर्गति के लिए, इस देश के भोले लोग गाँधी को दोष भी देते हैं। मैं आपसे पूछना चाहूँगा, कि यदि धर्म लड़ा रहा होता, तो ये सम्प्रदाविक दंगे क्या सारी दुनियाँ में न होते ? परन्तु सारी दुनियाँ में सारे सम्प्रदाय सुख से जी रहे हैं। केवल भारत में ही सम्प्रदायिकता की गन्दगी है। इसका कारण गाँधी नहीं, यहां के राष्ट्रीय नेता हैं जिन्होंने साम्प्रदायिक सद्भाव के नाम पर साम्प्रदायिक वर्गीकरण का, एक मनोवैज्ञानिक, घटिया किस्म की धोखेबाजी, का शिकार इस देश के नागरिकों को बनाया है। ये साम्प्रदायिक वर्गीकरण और उनसे उत्पन्न होती भेदभाव की व्वस्थायें ही साम्प्रदायिक तनाव और अलगाव का मूल कारण है। भूल सन्त की नहीं, भूल पंथ और उसके ठेकेदारों की है जिन्होंने सदा के लिए वोट बेंक बनाने की घटिया किस्म की राजनीति को सामने रखकर इस देश को और इस देश के भोले लोगों को लड़ाया और तबाह किया है, तथा अन्तिम महा-विनाश की ओर जो उन्हें निरन्तर लिए जा रहे हैं। साथ में साम्प्रदायिक सद्भाव के गीत भी गा रहें हैं।

मैंने एक गवांर झल्ली वाले मजदूर से पूछा, कि अगर उसके बहुत से बेटे हों और वह उनको हरिजन, सवर्ण, अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में वर्गीकरण कर दे। वर्गीकरण को ही आधार मानकर वह मानवीय मूल्यों को तिलांजलि देता, संकीर्ण सम्प्रदायों के हित में, भेदभाव की व्यवस्थायें भी बनाने लगे। ऐसी अवस्था में उसके बेटे आपस में मिल-जुलकर प्यार से रहेगें ? उसने उत्तर दिया–

"क्या आप पागलपन की बात करते हो बाबा ! सारा घर तबाह हो जायेगा। लड़के आपस में खून की होलियां खेलने लगेंगे"।

मैं आश्चर्य से उस अनपढ़ गवांर को देखता हूं। ये कैसे जानता है कि इसका घर तबाह हो जायेगा। हमारे राष्ट्रीय नेता और पढ़े-लिखे पत्रकार, समाज शास्त्री राजनीतिज्ञ, मनोवैज्ञानिक क्या इस गन्दगी को नहीं जानते, जिसको हर समझदार आदमी जानता है। उसे हमारे महान नेता क्यों नहीं जानतेहैं? यही प्रश्न मैंने जब उस मजदूर से पूछा, तो उसने जो उत्तर दिया

वह मैं आपको बता नहीं सकता हूँ। हमारे माननीय प्रधानमंत्री और राष्ट्रीय नेता दुखी हो जायेंगे।

संत की दृष्टि व्यापक होती है। गांधी ने कहा था, सबको इकट्ठा बैठाओ। गांधी संत थे। उनकी दृष्टि व्यापक थी। आज भी आपके चारों ओर इस प्रकृति में, कुदरत में, आप देखें, हर बाग में नाना प्रकार के वृक्ष खड़े हैं। नाना प्रकार के पेड़-पौधे हैं। क्या किसी पेड़ ने किसी दूसरे पेड़ से कहा कि मैं तुझे जीने का हक नहीं दूगां ? कदापि नहीं। जब प्रकृति में एक ही स्थान पर नाना प्रकार के पेड़ इकट्ठे रह सकते हैं। तो हम चन्द लोग, चन्द विचारधारायें और मान्यतायें होते हुए भी, क्यों नहीं साथ रह सकते। संत कुदरत को ही ईश्वर की लिखी किताब मानता है। पंथ कागजों में ही समाज को भ्रमाता है। बापू ने जो कुछ भी कहा उसका चलन इस प्रकृति में अर्थात् ईश्वर की किताब में सर्वत्र सदा रहा है। भेदभाव की व्यवस्थाओं को देने वाले राष्ट्रीय नेताओं ने पावन संत गांधी को भी बदनाम किया, उसकी हत्या की। इसलिए मैं कहता हूँ कि संत सदा निर्मल होता है और पंथ मतवाला हाथी। ये पंथ का मतवाला हाथी पहले संत को मारता है, फिर जनमानस को कुचलने चल देता है। अतीत के गहन अन्तरालों में मैंने इसे देखा है, वर्तमान के हर क्षण में, मैं इसे देख रहा हूँ।

ऐसा नहीं है, कि इस देश में साम्प्रदायिकता ने सिर न उठाया हो तथा साम्प्रदायिक तनाव न रहे हों। जब-जब पंथ के ठेकेदारों ने सिर उभारे, साम्प्रदायिकता की अंधी आंधी ने मनुष्यों को बांटा और खून की होलियाँ इस देश में भी खेली गयीं। परन्तु फैलती हुई उस संकीर्ण साम्प्रदायिकता को जब व्यापक संत ने रोका, तो वह दुर्गति सदा के लिए मिट गयी। मैं अतीत से इसका एक उदाहरण देना चाहूँगा।

मुस्लिम दासता के अन्तरालों में ही भारत की मूल संस्कृति के लोग नाना सम्प्रदायों में बंटने लगे थे। शैव, शाक्त, और वैष्णव का प्रमुख सम्प्रदायों में बंटवारा हो गया था, और इस पथ के ठेकेदार, लोगों को, हिंसक पशुओं की तरह लड़ाने लगे थे। अयोध्या की ही कहानी सुनाता हूँ। शैव और वैष्णव सम्प्रदाय की खून की होलियों को अयोध्या ने बहुत बार देखा है। जिसे आज आप हनुमान गढ़ी के नाम से जानते हैं, ये बहुत बार भैरव गढ़ी भी बनी है। जब शैव सम्प्रदाय के लोग हनुमान गढ़ी पर आक्रमण करते थे। वैष्णव सम्प्रदाय के संतों को मार डालते थे, अथवा भगा देते थे, तो हनुमान गढ़ी, भैरव गढ़ी बन जाती थी। और भैरव बन जाते थे हनुमान। वैष्णव सम्प्रदाय के लोग पुनः एकत्र होकर

आक्रमण करते और शैव सम्प्रदाय के लोगों को वहां से हटाकर पुन: कब्जा कर लेते थे। भैरव गढ़ी हनुमान गढ़ी बन जाती थी और भैरव जी, हनुमान जी हो जाते थे। यूं बहुत बार यह हनुमान गढ़ी बनी और भैरव गढ़ी बनी। खून की होलियां हो रहीं थीं। सम्प्रदायों में हिंसा की अंधी आंधियां जन्म ले चुकी थीं। यदि शैव सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति सांझ ढले वैष्णव सम्प्रदाय की बनी बस्ती के लोगों में चला जाता था, तो उसके जीवित लौटने की संभावना बहुत कम रहती थी। इस प्रकार की हिंसायें बदले की भावना से की गयी हत्यायें अत्याधिक हो रही थीं। इनका हर ओर चलन था।

तुलसी के ही समय की बात है। महा-कुम्भ का पर्व लगा था प्रयाग में। हिमालय की सुरम्य घाटियों से अद्भुत तपस्वी और ऋषि कल्पवास के लिए पधारे थे। उनके सामने साम्प्रदायिक हिंसा में लुटती, नष्ट होती भारत और भारती की चर्चा हुई। एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें ये विचार हुआ. कि सम्प्रदायों में बंटते हुए लोगों को किस प्रकार सम्भाव और समन्वय के सूत्र में बांधा जा सके। संत की दृष्टि व्यापक होती है उन्होंने समाधान ढूंढ़ लिया। सन्त तुलसी बुलाये गये, और उनसे कहा गया, कि वे राम कथा गायें। तुलसी कृत 'मानस' में महाशिव स्वयं श्रीराम कथा सुनाने लगे। और राम, शिव की पूजा करने लगे। पुन: रावण को जीतने के लिए, वैष्णव आराध्य श्री राम स्वयं नवदुर्गा की उपासना भी करते है। इस प्रकार तुलसी की मानस के द्वारा, भारत के सन्त शैव, शाक्त, वैष्णव सम्प्रदायों को पुन: स्मार्त बना लेते हैं। जब उनके आराध्य राम, कथा में एक दूसरे को असीम प्यार करते हैं। वे एक दूसरे की पूजा और सम्मान भी करते हैं; तब फिर उनके भक्त साम्प्रदायिक ठेकेदारों के द्वारा कैसे लड़ाये जा सकते हैं ? इस प्रकार घर-घर में मानस का प्रचार हुआ। और सम्प्रदायों में बंटते वैमनस्य और हिंसा को प्राप्त होते लोग सुन्दर समन्वय के साथ जुड़ जाते हैं। वैष्णव, शैव और शाक्त सब की उपासना करने लगते हैं। शैव, महा शिव के साथ ही राम कृष्ण और नव दुर्गा के पुजारी हो जाते हैं। वैष्णव, श्रीराम के, साथ दुर्गा और महाशिव के उपासक हो जाते हैं।

यदि भारत के संत ने आधुनिक राष्ट्रीय नेताओं की तरह सम्प्रदायों का वर्गीकरण कर दिया होता, तो आज इस देश में सनातन धर्म, हिन्दू संस्कृति का न जाने कब से विनाश हो गया होता। संत की दृष्टि व्यापक होती है। संत भटके हुए लोगों को भी जोड़ता है। पंथ की दृष्टि संकीर्ण है। हित साधन ही सर्वोपरि है। गांधी संत हैं। कांग्रेस पंथ है।

एक दूसरा सुन्दर समन्वय भी सभी सम्प्रदायों को जोड़ने के लिए उनमें समानता को लाने के लिए किया गया। महा-शिव के पुत्र गणपति को महा-विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के साथ बैठाया गया। लक्ष्मी जी नवदुर्गा भी हैं। इस प्रकार लक्ष्मी और गणेश में; शैव, शाक्त वैष्णव तीनों सम्प्रदायों का समन्वय किया गया। सारे देश में फैलती साम्प्रदायिक हिंसा को समन्वय के सूत्र में बांध दिया गया। मैं पुनः पूछता हूं आपसे कि यदि वर्गीकरण की धोखाधड़ी को ही अपनाया गया होता, तो इस देश में, इस देश के ही बहुसंख्यकों का कहीं पता न होता।

निर्मल संत गांधी इस बात को जानते थे, इसीलिए जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उन्होंने कांग्रेस पार्टी को ही समाप्त करने की बात करी। वे जानते थे कि आगे चलकर ये पुनः पंथ बनेगा और गांधी का हत्यारा हो जायेगा। आज साम्प्रदायिक वर्गीकरण इस देश की सबसे बड़ी घुटन है। धर्म निरपेक्षता की बात करने वाला भारत का संविधान संकीर्ण साम्प्रदायिकता को संरक्षण देता हुआ सारे मानवीय दृष्टिकोण खो देता है। संकीर्ण साम्प्रदायिकता को ही आधार मानकर भेदभाव की व्यवस्थाओं का समर्थक बन जाता है। ये भेदभाव की व्यवस्थायें ही आज इस देश में साम्प्रदायिकता, अलगाव-वाद और आतंकवाद का मूल कारण है। यहां हर व्यक्ति साम्प्रदायिक है। राष्ट्र-भक्ति और राष्ट्रीयता की भावना उन्हें छू भी नहीं जाती है। इसका मूल कारण यही है कि इस देश की राजनीति, संत की हत्या कर पंथ के ठेकेदारों की गोद में जाकर बैठ गयी है।

"जिसे संविधान तोड़े, उसे विधाता भी क्या जोड़े ?"

संत, सद्भाव के लिए वर्गीकरण को नकारता है। उसकी अवहेलना कर सारे समाज को एकता के सूत्र में बांधता है। परन्तु, पंथ के ठेकेदार साम्प्रदायिक वर्गीकरण को ही, सर्वोच्च प्राथमिकता देकर "बिल्ली और बन्दर बांट" की कहानी दुहराते हैं। भारत में आजादी के साथ ही राजनीति के हाथों साम्प्रदायिक वर्गीकरण की इस घुटन ने सारे देश को विषाक्त बना दिया है। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का वर्गीकरण पहले हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और पारसी के रूप में किया गया। साम्प्रदायिक सद्भाव इस वर्गीकरण के साथ ही लुटता चला गया। उसके बाद बहुसंख्यक हिन्दुओं का वर्गीकरण पुनः हुआ, जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी टुकड़े होकर अलग हट गये। कुछ काल के उपरान्त इस वर्गीकरण की गन्दगी में, सिख भी एक अलग अल्पसंख्यक सम्प्रदाय बन गया। आर्य-समाज भी अपने को अल्प-

अल्पसंख्यक सम्प्रदाय मानने लगा और रामकृष्ण मिशन भी, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय हो बहुसंख्यकों से अलग जा खड़ा हुआ। दिल्ली में यह चर्चा भी बड़े जोर पर है। कि एक दल विशेष ने अपने एक अल्पसंख्यक और हरिजन वोट बैंक टूट जाने के कारण, आर्य-समाज से हरिजन वोट बैंक की प्राप्ति तथा रामकृष्ण मिशन से, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के कटे वोटों की गिनती को पूरा करने के लिए ही इस नये वर्गीकरण को प्रोत्साहित किया है। इस नये तथ्य को इससे भी बल मिलता है, कि जब तक रामकृष्ण मिशन एक अलग अल्प-संख्यक सम्प्रदाय नहीं बना। भारत सरकार ने स्वामी विवेकानन्द को कोई भी विशेष मान्यता नहीं दी। स्वामी रंगनाथा नन्द को भी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार, अल्पसंख्यक सम्प्रदाय घोषित होने के बाद ही मनाया गया। जब तक आर्य-समाज, बहुसंख्यक लोगों से अलग होकर इस दल का विशेष वोट बैंक नहीं बना तब तक दयानन्द भी भावी भारत के निर्माता के रुप में राष्ट्रीय टी० वी० पर नहीं दिखाये गये। इन सबसे लगता है, कि शायद ये वर्गीकरण की धोखा-धड़ी अब, हर परिवार में पति और पत्नी को अलग ही करके रहेगी। चुनावी हथकण्डे के लिए अब नारी के प्रति भी उपरोक्त दल की मानवीयता जाग उठी है। भारत की औरत को वोट बैंक बनाया जाये उसके लिए रुपहले स्लोगन और हथकण्डे बाजार में आने लगे हैं।

हरिजन और सवर्ण में भी हिन्दुओं का बंटवारा कर दिया गया। जो अब अलग जातियों जैसा व्यवहार करने लगे हैं। जब देश का संविधान ही उन्हें दो धड़ों में बांट रहा हो, तो वह जुड़कर एक कैसे हो सकते हैं ? हरिजन और सवंण का वर्गीकरण सड़े मलवे की दुर्गन्ध की तरह, बदबू कों चारों तरफ फैलाता चला जा रहा है। उसके पुनः-पुनः वर्गीकरण भी होने लगे यथा :– जन जाति, पिछड़ावर्ग आदि-आदि।

जात-पात के वैमनस्य को मिटाने के लिए, भारत के संत और सद्ग्रन्थों ने बड़े ही सुन्दर ढंग से समन्वय की धारणायें प्रवाहित की थी। छुआछूत, जिसे कोई भी स्थान किसी भी सनातन धर्म के ग्रन्थ में हमें नहीं मिलता है। जन्मना व्यवस्था को भी सनातन धर्म के ग्रन्थ नहीं मानते। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य जिनके घरों में भी बालक उत्पन्न होता है, वहाँ पर भी सूतक और छूत मनायी जाती है। नाल काटने के लिए हरिजन जाति की दाई ही बुलायी जाती रही हैं। तथा छठी पर्यन्त जच्चा और बच्चा को हरिजन दाई के हाथ से छूकर खिलाने की परम्परा आदिकाल से आज तक सनातन धर्म में मनायी जाती है। जब तक बालक का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता, ब्राह्मण के घर में भी वह वेद का पाठ नहीं कर सकता। मूर्ति का स्पर्श नहीं कर सकता। यज्ञोपवीत संस्कार से पहले वह बालक

ब्राह्मण आदि घरों में भी शूद्र ही माना जाता है । निषाद बालक के 'राम' प्रिय सखा हैं । वशिष्ठ के गुरूकुल में इन दोनों का सहपाठी होना इस बात को प्रमाणित करता है कि संत और सद्ग्रंथ छुआछूत और जातिगत व्यवस्थाओं में विश्वास नहीं करते । महाभारत में नहुष संवाद में भी युधिष्ठर वर्ण-व्यवस्था को कर्मणा ही मानते है । जन्मना नहीं मानते हैं। भगवान राम का शबरी के जूठे बेर खाना, निषाद राज गुह को सीने से लगाना । श्री भरत का निषाद राज गुह को प्रमाण करना । ये सारे प्रणाम इन कथाओं में भेदभाव की व्यवस्थाओं को समाप्त करने के लिए ही संत और सद्ग्रंथ लेते हैं । वे वर्गीकरण की गन्दगी को नहीं फैलाते ।

आज भी सारी दुनिया में जातिगत अथवा सम्प्रदाय-गत वर्गीकरण किसी भी संविधान में नहीं है । हर जगह पर नागरिक को नागरिक ही माना गया है । वहाँ मद्द भी, गरीब और जरूरत के आधार पर होती है । जातिवाद पर मद्द देने की बात केवल भारत में है। राष्ट्रीय नेताओं का नारा भी है ।

"जात पर न पांत पर, इन्दिरा जी की बात पर, मोहर लगेगी हाथ पर ।"

इस रूपहले नारे को सुनकर क्या कोई विश्वास करेगा कि ये जाति पर संरक्षण । जाति पर आरक्षण, जाति पर पैसा, जाति पर मद्द, जाति पर डिग्री, जाति पर सेलेक्शन और फैलता जात-पांत का जहर और लुटती मानवता । जात-पांत के जहर को जहरीला बना दिया है । जात-पांत मिटाने वाले ही इस देश में भयंकर जात-पांत की दुर्गन्ध फैला रहे हैं । साथ ही जात-पांत मिटाने के रुपहले नारे भी लगा रहे हैं । ये पंथ हैं। और वह सन्त था । संत पंथ के इस भेद को हम अच्छी तरह स्वयं देख सकते हैं । पंथ के ठेकेदार समस्याओं को जीवित तथा अधिक भयावह बनाये रखना चाहते हैं, जिससे उनका महत्व बना रहे । समस्या ही नहीं होगी तो समूढ़ पंथ के ठकेदारों को पूजेगें और मानेगें भी नहीं । संभवतः इसलिए आदिकाल से पंथ समाधान के नाम पर नई से नई समस्यायें उत्पन्न करता रहता है. तथा आज भी कर रहा है ।

कभी संत, पंथ नहीं चलाते । सदा पंथ, संत के सैकड़ों सालों के बाद आरम्भ होता है । ऐसे बहुत कम संत हैं, जिन्होंने पंथ चलाये हों यथा :– महर्षि दयानन्द, महात्मा बुद्ध, और महावीर । संत सदा पंथ से दूर रहता है । क्योंकि वह जानता है कि पंथ उसकी घुटन और मौत है, तथा पंथ सारे समाज की घुटन है । आप जो कोई भी हैं, जिस किसी

भी सम्प्रदाय के हैं। आप अपने से एक बार ईमानदारी से पूछ लें कि क्या आप संत के होना चाहेंगें ? अथवा पंथ के ?

भारत के आरमस्थ सन्त आदिकाल से ही, समस्याओं का सहज, सरल, निर्णायक समाधान समाज को देते रहे हैं। आज हमारे राष्ट्रीय नेता जिस पर्यावरण के लिए चिंतित हैं। गंगा और यमुना के दूषण की कथायें रेडियों और टेलीविजन पर सुना रहे हैं। इस पर्यावरण को भारत के सन्त ने धार्मिक आस्थाओं के साथ बांधकर, भारत को आदिकाल से समृद्ध और कभी न नष्ट होने वाला पर्यावरण दिया था। नदियों की देवियों के समान पूजा; पर्वतों की पूजा; पेड़ और पौधों की पूजा; चूहे से लेकर शेर तक को, नाना देवियों के साथ मन्दिरों में प्रतिष्ठित करना; उन्हीं देवियों के साथ उनकी भी पूजा करना। जिसके कारण इस देश का पर्यावरण तथा प्राकृतिक संतुलन कभी भी दूषित नहीं हुआ। आजादी के साथ ही सन्त और धर्म को राजनीति से, तथा शिक्षा से अलग कर दिया गया। राज-नीति; समाज और शिक्षा, नेताई तंत्र के हाथों में चला गया। जिसके कारण आज सारा देश दूषित हो रहा है। इस देश के राष्ट्रीय नेता और माननीय प्रधानमंत्री भी व्यापक दूषण से चिंतित हैं। टी०वी प्रोग्राम देकर किसी सुन्दर समाधान को ढूंढ रहे हैं। अब तो टी०वी० प्रसारण ही समाधान है ?

चारों ओर फैलता भ्रष्टाचार घूसखोरी, खाद्य पदार्थों में मिलावट तथा राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय दलाली, आज सारे देश में आम चर्चा का विषय है। आजादी के ४० सालों में सन्त से छूटे इस देश ने जो कुछ बटोरा, वह यही सब तो है। आज देश में व्याप्त इस दूषण के लिए राष्ट्रीय नेता समाधान के नाम पर नयी समस्यायें उत्पन्न कर रहे हैं। भारत का सन्त आदिकाल से इस दूषण को धार्मिक आस्थाओं, शिक्षा तथा ईश्वर के प्रति समर्पण, के माध्यम से मिटाता चला आया है। आज की राष्ट्रीय शिक्षा, बालक को शिक्षा का केन्द्रबिन्दु न मानकर, केवल भौतिक भटकाव को ही केन्द्र मानकर बनायी गयी है। आज की शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

"अच्छी नौकरी, बढ़िया तनख्वाह और मोटी घूस"

मैं चिता की भस्मी से फल कैसे बना था ? फल से बालक कैसे बना ? ये प्रकृति, ये मिट्टी मुझे बारम्बार इंसान क्यों बना रही है ? मैं कौन हूं ? मैं क्यों हूं ? मैं कहां से आया हूं ? मुझे कहां जाना है ? मेरा इस प्रकृति के प्रति क्या धर्म है ? मेरा परमेश्वर के प्रति

क्या धर्म है ? मेरा परिवार तथा समाज के प्रति क्या धर्म है ? मेरी उत्पत्ति का क्या रहस्य है ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? आदि-आदि।

आज शिक्षा में न तो ये प्रश्न है और न उनका उत्तर। केवल अच्छी नौकरी और मोटी घूस के लिए ही, हर बाप अपनी औलाद को पढ़ा रहा है, तथा प्राइमरी कालेज के अध्यापक से लेकर विश्वविद्यालय का कुलपति, शिक्षा-मन्त्री और प्रधानमंत्री इसी को,एक ईमानदार शिक्षा मान रहे हैं।

फौज के मेजर होकर, डाक्टर होकर, इंजीनियर होकर सरकार का एक बड़ा अफसर होकर, यदि मैं घूस लेता हूं तो इसमें मैं अकेला कैसे दोषी हो गया ? आप सच बताइये कि आपने मुझे पढ़ाया क्यों था ? क्या इसीलिए नहीं; कि मैं अच्छी नौकरी और बढ़िया तनख्वाह और मोटी घूस पर आऊँ। एक सुन्दर सोने की लंका बनाऊँ। तो मेरे मां-बाप और सारा समाज मेरी सफलता पर हर्षित हो। मैं कौन हूँ ? मैं क्या हूं ? मेरा धर्म क्या है ? इसके लिए तो मुझे कभी आपने पढ़ाया नहीं था ? जब शिक्षा का मूल केन्द्र ही भ्रष्टाचार और भटकाव है तो आप ही बताइये, कि राष्ट्र का चरित्र कैसा होगा ?

भारत के संत ने शिक्षा को सदा सन्यासी के पास गुरुकुल में रखा था। राजा से रंक तक के बालक. सभी प्रकार की शिक्षा के लिए, सन्यासी के पास आते थे। शिक्षा के अतिरिक्त सन्यासी को न्याय का अधिकार देकर शेष सभी सामाजिक व्यवस्थाओं से अलग कर दिया गया था। जिससे कि वह एक न्यायाधीश की तरह परिस्थितियों से निलिप्त रहता हुआ, सभी समस्याओं पर स्पष्ट और ईमानदार निर्णय दे सके। इसे उदाहरण देकर स्पष्ट करता हूं:–

कल्पना करें कि आप न्यायालय में बैठे हुए हैं। न्यायाधीश और वकील मुकदमें पर बहस कर रहे हैं। दो वकील हैं। एक वादी का है दूसरा प्रतिवादी का है। न्यायाधीश तथा दोनों वकील, समान भाव से कानून को जानते हैं। फिर भी निर्णय का अधिकार केवल न्यायाधीश को ही दिया गया है। यदि वकीलों से कहें कि वे निर्णय दें तो निश्चित रूप से दोनो वकील अपने-अपने पक्ष में निर्णय देना चाहेगें। तब टकराव की स्थित उत्पन्न हो जायेगी। वकील, अपने-अपने पक्ष से लिप्त होने के कारण, कभी भी ईमानदार निर्णय नहीं दे सकते। केवल न्यायाधीश जो दोनों पक्षों से निलिप्त है। वही ईमानदार निर्णय दे सकता है।

भारत की सामाजिक और राजनैतिक नेताई व्यवस्थाओं में, जज (सन्त) को तो भगा दिया गया है । अब वकीलों से ही निर्णय की बात की जा रही है । जिसके कारण पार्लियामेन्ट से लेकर फुटपाथ पर बैठे, बीड़ी खींचते, एक मजदूर तक, तनाव और टकराव बना हुआ है । राजनीतिक दल, दलगत हित साधन से, कभी भी ऊपर नहीं उठ पाते हैं । अब तो दलगत हित साधन से ऊपर,उनके व्यक्तिगत स्वार्थ भी, ऊबकर बाहर आने लगे हैं । सारा देश और सारा समाज, इस घुटन को प्राप्त हो रहा है ।

भारत के सन्त ने धर्म-ग्रन्थ के रूप में प्रकृति को ही मूलग्रथ माना । शेष सभी सद्-ग्रंथों को आध्यात्मिक विश्वविद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों का स्वरूप दिया । चौरासी लाख योनियों को ८४ लाख अध्याय माना तथा मनुष्य की योनि को परीक्षा की घड़ी हो गयी । जब प्रकृति ही मूल ग्रंथ है तो उसका पहला अक्षर छात्र स्वयं है । ये मानते हुए शिक्षा का केन्द्र छात्र को ही बनाया गया । मन्दिर भी, छात्र के स्वरूप में प्रकट किये गये हैं । यथा:-

"पल्थी जैसा चबूतरा, धड़ जैसा गोल कमरा, सिर के जैसा गोल गुम्बद । ब्रह्मचारी बालक की जटाओं के जूड़े के जैसा कलश, आत्मा जैसी प्राण प्रतिष्ठित मूर्ति तथा जीव के जैसा मन्दिर का पुजारी । इस प्रकार मन्दिर को ही शिक्षा आरम्भ मान करके, छात्र को ही शिक्षा का केन्द्र मानकर, पढ़ाया गया ।"

निर्माण सदा नीचे से ऊपर को जाता है । जब भी आप कोई मकान बनाते हैं तो पहले नींव रखते हैं, और तभी उसके ऊपर की दीवार उठाते हैं । परन्तु संस्कार सदा ऊपर से नीचे आता है । यथा:-"प्लास्टर और पुताई ।" यदि भारत की संस्कृति के निर्माण में दोष होता तो दासता के आरम्भ में ही ये धर्म और संस्कृति लुप्त हो गयी होती । जैसा कि अन्य देशों में हुआ । परन्तु संत के द्वारा निर्मित भारत और भारती को, लम्बी दास्ता के अंत-राल भी नहीं तोड़ पाये । जब देश स्वतन्त्र हुआ यहां के मूल निवासी समृद्ध भी थे और ८५ प्रतिशत बहुमत भी उनका था । जो कि वास्तविक विचारधारा का जीवन्त प्रमाण है । परन्तु चालीस सालों के संस्कारगत दोष जो ऊपर से नीचे तक आ रहे हैं । जो राष्ट्रीय नेताओं की महान देन है उसके कारण आज सारा देश विषाक्त हो रहा है ।